

20 शिक्षा में खेलों का बदलता स्वरूप

हृदयकान्त दीवान
प्रीति मिश्रा

पिछले दो दशकों में, स्कूलों में खेलों के बारे में दिलचस्पी बहुत अधिक बढ़ी है। क्रिकेट, फुटबॉल और हॉकी सदा ही लोकप्रिय खेल रहे हैं, लेकिन उपग्रह टेलीविजन के आने के बाद ज्यादा से ज्यादा लोग अन्य अन्तर्राष्ट्रीय खेलों के प्रति भी जागरूक हो रहे हैं। हाल ही में भारत में हुए कॉमनवेल्थ खेलों ने भी इस लोकरुचि में इजाफा किया है। हाल ही तक, सिर्फ कुछेक खिलाड़ी ही अपनी प्रतिभा का फायदा इस रूप में उठा पाते थे कि उन्हें खेल–कोटे के तहत अपनी आगे की पढ़ाई के लिए अच्छे शिक्षा संस्थानों में प्रवेश मिल जाता था या फिर नौकरी मिल जाती थी। आजकल पहले से अधिक संख्या में खिलाड़ियों को प्रसिद्धि मिल रही है। अब खेलों को भी एक सम्मानित और कमाऊ करियर–विकल्प के तौर पर देखा जाने लगा है। नतीजतन, खेलों से सम्बद्ध कौशल सीखने के कई रास्ते खुल गए हैं, और विद्यार्थियों के लिए कई निजी खेल–प्रशिक्षण अकादमियाँ और शिविर स्थापित हुए हैं –

1. हाल के वर्षों में सरकार भी इस बात के प्रति पहले से अधिक सचेत हुई है कि देश में अच्छे खिलाड़ी होने चाहिए।
2. इसके चलते उसने कई खेल संस्थानों को अपना समर्थन दिया है और बच्चों को विशिष्ट खेलों में प्रशिक्षित करने के लिए विशेष स्कूल स्थापित किए हैं।

कुछ अभिभावक अपने बच्चों को अच्छी से अच्छी कोचिंग और प्रैक्टिस दिलवाने के लिए पैसा खर्च करने को भी तैयार रहते हैं। खेलों के प्रति अभिभावकों की यह उत्प्रेरणा कुछ मायनों में वैसी ही है जैसी बच्चों को पढ़ाई के विषयों में ट्यूशन आदि दिलवाने के मामले में दिखाई देती है। इन सबके पीछे प्रेरक शक्ति के तौर पर यही इच्छा और आशा रहती है कि बच्चे को अन्ततः अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर खेलने लायक मान लिया जाए।

इस सबके बावजूद विद्यार्थियों, अध्यापकों और अभिभावकों के मन में खेलों का स्थान और प्रभाव अभी भी कम ही है। सच्चाई यह है कि कुल मिलाकर, हम आज भी ऐसी नौकरियों की तलाश में रहते हैं जो सुरक्षित और लम्बे समय के लिए हों। खेलों में रोजगार आपसे सदा पहलकदमी, अभ्यास और प्रदर्शन की माँग करते हैं और इसीलिए कम आकर्षक माने जाते हैं। सुरक्षित नौकरियों के विकल्प बड़े सीमित होते हैं, और उनके लिए अपेक्षित होता है कि आप शिक्षा और अध्ययन के उच्च स्तरों तक पहुँचें। अपने बच्चों को 'अच्छी, सुरक्षित, सफेदपोश' नौकरियों में देखने की बेचैनी के चलते कई अभिभावक खेलों पर खर्च होने वाले समय को व्यर्थ समझते हैं। अधिकांश माँ–बाप और अध्यापक आज भी खेलों को बच्चों की पढ़ाई में एक रुकावट मानते हैं। बहुत कम स्कूल होंगे जो अपने सभी विद्यार्थियों को खेलों में शामिल करते हैं। इसकी बजाय वे अपना सारा ध्यान ऐसे खिलाड़ी, टीम या टीमें बनाने पर लगाते हैं जिनमें मैच और टूर्नामेण्ट जीतने की क्षमता हो। सभी बच्चों को खेलों में भाग लेने का मौका दिया जाना जरूरी नहीं समझा जाता। खेलों को बच्चे के व्यक्तित्व के विकास के हिस्से के तौर पर नहीं लिया जाता। बल्कि खेलों में भाग लेने वाले कई लोग भी उन्हें बस दूसरे दर्जे का कोई न कोई रोजगार हासिल करने के माध्यम के रूप में देखते हैं।

सरकारी नीतियाँ और कार्यक्रम

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968 से उद्धृत –

(15) गेम्स और स्पोर्ट्स : खेलों को बड़े पैमाने पर इस उद्देश्य से विकसित करने की जरूरत है कि सामान्य विद्यार्थी तथा इस क्षेत्र में उत्कृष्ट विद्यार्थी, दोनों के शारीरिक स्वास्थ्य



और खेल–भावना में बेहतरी लाई जा सके। जहाँ भी शारीरिक–शिक्षा सम्बन्धी राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम विकसित करने के लिए खेल–मैदान और अन्य आवश्यक सुविधाएँ मौजूद नहीं हैं, वहाँ ये सुविधाएँ उपलब्ध करवाने को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 ने भी इसी तरह समग्र क्षमताएँ विकसित करने और शारीरिक गतिविधि के महत्व पर बल दिया था। नतीजतन, ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड के तहत स्कूलों को एक फुटबॉल और विविध खेल–सामग्री मुहैया करवाई गई थी। एक ओर जहाँ इन सब बातों से लगता है कि खेलों के महत्व को स्थान दिया जा रहा है, वहीं दूसरी ओर इनका क्रियान्वयन बहुत सतही था। कमोबेश संगीत, और पढ़ने से सम्बन्धित सामग्री की तरह ही, प्रदान की गई खेल की सामग्री भी अच्छी गुणवत्ता की नहीं थी और जब वह स्कूलों तक पहुँची तो उपयोग करने लायक भी नहीं बची। स्टॉक एण्ट्री और सामग्री संरक्षण के नियम इतने अटपटे बनाए गए थे कि कोई भी विश्वास के साथ उसका इस्तेमाल करने को तैयार नहीं होता था। बहुत आगे चलकर स्टॉक एण्ट्री के नियम थोड़े लचीले तो कर दिए गए लेकिन फिर स्कूलों को कोई खेल सामग्री ही नहीं दी गई। मगर न तो अभिभावकों और न ही शैक्षणिक बिरादरी को इसमें कोई चिन्ता की बात नजर आई।

उदाहरण के लिए, शिक्षा के विकल्प के तौर पर नई तालीम आन्दोलन, बाल मन में कई मूल्य विकसित करने के प्रति सजग था। इसके मुख्य बिन्दुओं में शामिल थे – सहयोग, स्थानीय समुदाय के आर्थिक और सामाजिक जीवन में भागीदारी, स्वयं का और अन्य मनुष्यों का सम्मान तथा पर्यावरण के प्रति संवेदनशील होना। दिल, दिमाग और हाथ पर बल देने के बावजूद नई तालीम में खेल सम्बन्धी कोई तत्व नहीं था। इसमें रचनात्मक कार्य, जिम्मेदार शिल्पकार्य, उसकी अहमियत को समझ पाने के मकसद से शारीरिक श्रम आदि शामिल थे, लेकिन खेल नहीं थे। कोशिश थी कि अपने हाथों से काम करने को सम्मानजनक और मूल्यवान बनाया जाए। कुछ रच पाने के आनन्द और सामाजिक रूप से उपयोगी होने की बात ने इसके महत्व को बढ़ाया। लेकिन स्वास्थ्य की बात को इसमें शामिल नहीं किया गया। अभी हाल ही में छोटे बच्चों के लिए पोषण को जरूर एक घटक के तौर पर जोड़ा गया है लेकिन इससे ज्यादा कुछ और नहीं। मगर हमें ध्यान में रखना होगा कि नई तालीम के सिद्धान्त माँग करते हैं कि स्वास्थ्य कार्यक्रम, सम्पूर्ण का एक हिस्सा हो – बच्चे का स्वास्थ्य–विकास तो होना होगा लेकिन इसे बाकी सबसे अलग–थलग करके नहीं रखा जा सकता। और एक सरोकार यह भी है कि स्वास्थ्य के इस कार्यक्रम में कुछ खुशी भी शामिल रहे!

'स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन' का नारा लगाया जाता है और चहुँमुखी विकास की तरफदारी की जाती है लेकिन व्यवस्था का नियन्त्रण करने वालों या उपयोगकर्ताओं या फिर स्कूलों में भी ऐसा कोई नहीं होता जो इन सब बातों की प्रासंगिकता और महत्व का सच में कायल हो। अधिकांश शिक्षाविदों के लिए खेलों का एजेण्डा बड़े महत्व का नहीं है और इसी सोच के चलते किसी भी स्कूली कार्यक्रम के अन्तर्गत खेलकूद



में सभी बच्चों की भागीदारी को सम्भव बनाने के हिसाब से ठोस और सुस्पष्ट योजना नहीं बनाई गई है। डी.पी.ई.पी. और सर्व–शिक्षा अभियान के तहत प्रारम्भिक शिक्षा में फिर से जान डालने के प्रयास हुए हैं; माध्यमिक शिक्षा को पुनर्जीवित करने की भी अभी हाल ही में कोशिशें हुई हैं लेकिन इनमें भी खेलों को शिक्षा के एक महत्वपूर्ण घटक के तौर पर शामिल नहीं किया गया है।

भारतीय सन्दर्भ में यह बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि शिक्षा के बारे में आम नजरिए के तहत माना जाता है कि वह 'खेल' से बिल्कुल अलग है। शिक्षा को एक ऐसे गम्भीर उद्यम के तौर पर लिया जाता है जिसमें जबरदस्ती लागू किए गए अनुशासन की आवश्यकता है। हाल ही में ऐसे आकर्षक क्लासरूमों की बात होने लगी है जिनमें गुंजाइश छोड़ी जाए कि बच्चे इधर से उधर हो सकें, यहाँ–वहाँ घूम सकें और हर गतिविधि में सक्रिय भागीदारी निभा सकें। ऐसे माहौल में खेलों को तो बस समय बिताने का साधन मात्र माना जाता है और उनके प्रति हमारा रवैया उदासीनता से भरा ही नहीं, बल्कि विरोध का भी रहता है। स्कूल और माँ–बाप बच्चों को गणित या अँग्रेजी की ट्यूशन के लिए भेजने को तत्पर रहते हैं, खेलों के लिए नहीं। अपवाद होते हैं तो बस वे बच्चे जिन्हें जिला या राज्य स्तर की टीम में होना होता है, और वे बच्चे जो खेलों को भविष्य में अपने पेशे के तौर पर देखते हैं।

सन् 2005 में शिक्षा की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा बनाने को लेकर चली लम्बी– चौड़ी कवायद से शारीरिक शिक्षा की जरूरत रेखांकित हुई। हाल के वर्षों में प्रारम्भिक स्कूली शिक्षा के दौरान शारीरिक विकास के महत्व को बल मिला है। इस समझ के चलते कि पोषण भी शारीरिक–विकास का एक प्रमुख अंग है, मध्याह्न भोजन की योजना अमल में आई। यह योजना अब एक राष्ट्रीय कार्यक्रम बन चुकी है। इसकी शुरुआत ही शायद बच्चों को लम्बे समय तक स्कूल में बनाए रखने और उन्हें स्कूल में खींच लाने के लिए हुई थी।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एन.सी.एफ.) विकसित करने के दौरान स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा पर एक पर्चे का मसौदा भी तैयार किया गया था। यहाँ यह बताना जरूरी है कि इस पर्चे में खेलों का 'खे' तक चर्चा में नहीं आया है।

शारीरिक शिक्षा बनाम खेल

स्कूल–कार्यक्रम के एक हिस्से के तौर पर खेलों को शामिल करने की जरूरत और उसकी सम्भावनाओं पर विचार करना है तो खेलकूद के मुख्य पहलुओं को चिह्नित करना उपयोगी होगा। वर्तमान में स्कूलों में चलने वाले शारीरिक प्रशिक्षण (पी.टी.) कार्यक्रम में नियमित तौर

शारीरिक व्यायाम अधिक व्यवस्थित होते हैं और उनके परिणाम के बारे में भी अधिक पूर्वानुमान लगाया जा सकता है, कार्यक्रम–कैलेण्डर बन सकता है और नतीजों पर नजर रखी जा सकती है। मगर परस्पर–सहयोग, बिना 'दाँव' की प्रतिस्पर्द्धा और भरपूर कोशिश के साथ सीखने से मिलने वाला आनन्द इस में शामिल नहीं होता। दूसरी ओर, अच्छे व्यवस्थित खेल में भी रूटीन व्यायाम तो होता ही है, उसके अलावा और भी बहुत कुछ होता है।

पर शारीरिक अभ्यास शामिल किए जाने की सम्भावना रहती है और हो सकता है कि कहीं–कहीं नियमित योग कक्षाएँ भी चलती हों। पोषण और स्वास्थ्य कार्यक्रम भी हो सकता है। कुछ अर्थों में ये सब मिलकर राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005 में निर्धारित शर्तें पूरी करते हैं। लेकिन सवाल है कि क्या यह पर्याप्त है? एक ओर तो शारीरिक विकास हेतु इस प्रकार के प्रशिक्षण और दूसरी ओर खेलों में भागीदारी के माध्यम से शारीरिक विकास का उद्देश्य हासिल करने की कोशिश – क्या इन दोनों में कुछ अन्तर है?

तर्क दिया जा सकता है कि शारीरिक व्यायाम अधिक व्यवस्थित होते हैं और उनके परिणाम के बारे में भी अधिक पूर्वानुमान लगाया जा सकता है, कार्यक्रम–कैलेण्डर बन सकता है और नतीजों पर नजर रखी जा सकती है। मगर परस्पर–सहयोग, बिना 'दाँव' की प्रतिस्पर्द्धा और भरपूर कोशिश के साथ सीखने से मिलने वाला आनन्द इस में शामिल नहीं होता। दूसरी ओर, अच्छे व्यवस्थित खेल में भी रूटीन व्यायाम तो होता ही है, उसके अलावा और भी बहुत कुछ होता है। एक खेल में स्वतःस्फूर्त सहजता होती है और वह अनुभव की विविधता भी प्रदान करता है। खेलों से मिलने वाले सबक भी कई हैं। इसके उलट, शारीरिक व्यायाम उबाऊ होते हैं, वे दोहराव के शिकार होते हैं, और कुल मिलाकर पढ़ाई के नित्यक्रम को ही आगे बढ़ाते हैं।

पी.टी. के माध्यम से की जाने वाली कसरत रणनीति, योजना और उद्देश्य को पाने के लिए स्वयं को पूरी तरह से झोंक देने की कोई इच्छा पैदा नहीं करती। वहीं टीमों वाले खेलों में नेतृत्व देने, सहयोग करने, योजना और रणनीति बनाने की गुंजाइश रहती है। खेल के दौरान उपलब्ध विकल्पों में से एक को चुनने के लिए तुरन्त फैसला लेने की स्थितियाँ बनती हैं। इसी के चलते शरीर और दिमाग दोनों काम में आते हैं। पी.टी. और योग के तहत मन को अनुशासित रखने में मददगार अभ्यास होते हैं – इस दृष्टि से वे नियमित शिक्षा और अध्ययन से अधिक मिलते–जुलते हैं न कि खेलकूद से।

पी.टी. प्रोग्राम का फोकस प्रशिक्षक द्वारा किए जा रहे अन्य कार्यों से भी स्पष्ट हो जाता है। सभी स्कूलों में पी.टी. प्रशिक्षक के सबसे महत्वपूर्ण कामों में से एक होता है अनुशासन बनाए रखने का काम। अक्सर उसकी जिम्मेदारी बच्चों को सजा देने की रहती है। और इस सजा का एक रूप होता है किसी न किसी तरह का शारीरिक व्यायाम। इसलिए इसमें अचरज की बात नहीं कि बच्चे पी.टी. के पीरियड को एक सजा के रूप में लेते हैं और शारीरिक–प्रशिक्षक के साथ होने में वे असहज महसूस करते हैं, यह उन्हें अच्छा नहीं लगता।

इतना ही नहीं, पी.टी. शिक्षक भी अपनी इस भूमिका में कैद होकर रह जाता है, और वह चाहे कितना भी मृदुभाषी और खुश–मिजाज क्यों न रहे, बच्चे अक्सर उससे सहमे–सहमे ही घूमते हैं। दूसरी ओर खेल आपको ऐसे अवसर प्रदान करते हैं कि शिक्षक बच्चों के साथ मिलकर खेलते हुए स्वाभाविक तौर पर उनके सम्पर्क में रहता है। वह भी अन्य खिलाड़ियों की तरह खुशी और निराशा व्यक्त कर सकता है और इस तरह दूरी और शिष्टाचार की बाधाओं के पार जा सकता है।

प्राथमिक स्कूलों के स्तर पर पी.टी. बच्चों के मन को कुछ हद तक व्यवस्थित और अनुशासित करने में तो उपयोगी हो सकती है, लेकिन उन्हें भी आराम और अपनी ऊर्जा को उन्मुक्त ढंग से इस्तेमाल करने के अवसर चाहिए। खेलकूद उन्हें ये अवसर आसानी से उपलब्ध करवा सकते हैं। जैसे–जैसे बच्चे बड़े होते हैं, स्कूल का काम मेहनत और एकाग्रता की माँग करता है। ऐसे में ढर्रे से हटकर कुछ ऐसा करने की आवश्यकता रहती है जो महत्वपूर्ण तो हो, लेकिन उसी तर्ज का नहीं। ये खेल भी हो सकते हैं, खेलकूद भी और रचनात्मक दस्तकारी भी।



खेल बनाम खेलकूद

खेल मन बहलाने का काम करते हैं, वे हमें तरोताजा रखते हैं और अमूर्त औपचारिक पढ़ाई की नीरसता को तोड़ते हैं। 'बज़', 'मैथ्सी' और अन्ताक्षरी जैसे खेल गणित, भाषा, ई.वी.एस. या अन्य किसी पाठ्यक्रम का हिस्सा हो सकते हैं। वास्तव में तो विभिन्न विषयों की कई गतिविधियों को एक खेल का रूप दिया जा सकता है। फिर शतरंज, लूडो, कैरम जैसे खेल भी हैं जो रणनीति और शरीर–संचालन के कौशल तो विकसित करते ही हैं, संयोग की अहमियत का अहसास भी जगाते हैं। लेकिन आमतौर पर ये व्यक्तिगत स्तर पर ही खेले जाने वाले खेल होते हैं और इनमें समूह के साथ मिलकर काम करना शामिल नहीं है। इनमें शारीरिक गतिविधि भी कुछ खास नहीं होती। घर में और स्कूल में खेले जाने वाले खेल बहुत किस्म के होते हैं और इनमें फेरबदल कर बहुत सारे उद्देश्य पूरे किए जा सकते हैं, लेकिन खेलकूद से जिन उद्देश्यों की पूर्ति हो सकती है, उनकी पूर्ति खेल से नहीं हो सकती।

स्कूलों में खेलकूद

दस्तकारी, संगीत, कला और नाटक लम्बे समय से स्कूली कार्यक्रमों का हिस्सा रहते आए हैं लेकिन इन्हें हमेशा ही पाठ्येतर गतिविधियों के तौर पर देखा गया है। नई शिक्षा नीति, 1986 के चलते सामाजिक रूप से उपयोगी कार्य (एस.यू.पी.डब्ल्यू.) की अवधारणा शैक्षणिक शब्दावली का एक हिस्सा बन गई। सभी स्कूलों से यह अपेक्षा रही कि वे अपनी नियमित समय– सारिणी में एस.यू.पी.डब्ल्यू. को स्थान देंगे, लेकिन खेलकूद को तो स्थान इसके तहत भी नहीं मिला।

खेलों में नौकरी की बढ़ती सम्भावनाओं

को देखते हुए खेलों के प्रति अभिभावकों के रवैये में तो नर्मी आई है, लेकिन शैक्षणिक संस्थाओं के रवैये में, 'चहुँमुखी विकास' जैसे मन्त्र के बढ़ते जाप के बावजूद, कोई बदलाव नहीं आया है। मोटेतौर पर दो स्वतन्त्र कारक इसके जिम्मेदार हैं। पहला, स्कूलों की मुख्य भूमिका उच्च शिक्षा, खासतौर से पेशेवर शिक्षा की छलनी के तौर पर देखी जाती है। इस पेशेवर क्लब से बाहर रह जाने के डर का ही नतीजा है कि कुछ ही विद्यार्थी खेलों में अपनी ऊर्जा लगाते हैं।

दूसरा कारक है कि स्कूल में ठीक–ठाक गुणवत्ता के खेलों की व्यवस्था के लिए बुनियादी खेल–सुविधाओं तथा कोच और शिक्षकों की नियुक्ति पर अच्छा–खासा पैसा लगाना पड़ता है। टाइम–टेबल में भी गुंजाइश निकालनी पड़ती है। इसलिए अचरज नहीं कि बहुत कम स्कूल ही ऐसी खेल गतिविधियाँ करवा पाते हैं जिनमें बड़ी संख्या में बच्चे भाग लेते हों। कुछ स्कूलों के पास बुनियादी खेल सुविधाएँ भी हैं और जरूरी साज–सामान भी, लेकिन वे बस खेलों में बेहतर साबित होने वाले बच्चों के साथ ही काम करते हैं। तमाम ऊर्जा इन बच्चों के उत्कृष्ट प्रदर्शन पर लगाई जाती है ताकि उनका चयन जिला, राज्य या राष्ट्रीय स्तर की टीमों में हो जाए।

किस तरह के खेल

इस बात पर गौर करना भी जरूरी है कि स्कूल की सीमाओं के मद्देनजर किस तरह के खेल हो सकते हैं। ऐसे खेल हैं जिनके लिए काफी अधिक समय की आवश्यकता रहती है, और तेज रफ्तार तथा छोटी अवधि वाले खेल भी होते हैं। कुछ खेलों में बहुत तैयारी और साधनों की जरूरत होती है जबकि अन्य में ऐसा लम्बा–चौड़ा कुछ नहीं होता। कुछ खेलों में एक ही वक्त पर सिर्फ कुछ बच्चे ही भाग ले सकते हैं जबकि कुछ खेलों में बहुत सारे बच्चे एक साथ खेल सकते हैं। सब अपनी पसन्द चुनने के लिए आजाद हैं लेकिन चुना गया विकल्प ऐसा होना चाहिए कि वह स्कूल के कार्यक्रम में खप सके और सब बच्चे उसमें भाग ले सकें। इन दो शर्तों के चलते विस्तृत तैयारी की माँग करने वाले खेल खारिज हो जाते हैं। जिस खेल के लिए बहुत से सामान की जरूरत हो या मैदान के लिए लम्बी–चौड़ी तैयारी जरूरी हो, वह खेल सबके लिए नहीं हो सकता। क्रिकेट मैच देखना मजेदार और आरामदायक हो सकता है लेकिन दर्शकों को उसमें भागीदार नहीं माना जा सकता। क्रिकेट इस लिए भी स्कूली खेल के तौर पर उपयुक्त नहीं है क्योंकि उसके लिए बहुत समय, मैदान और साज–सामान की जरूरत पड़ती है। शायद बेहतर यही है कि उन खेलों से बचा जाए जिनमें एक वक्त पर केवल कुछ ही बच्चों को शामिल किया जा सकता है। ऐसा खेल अधिकांश बच्चों को तो केवल दर्शक ही बनाकर रख देगा।

सीमित संसाधनों के साथ भी बच्चों को खाली समय और कुछ सामग्री दी जाती है तो वे कुछ नया करते हुए अपने खेल खुद ही रच पाएँगे, और दरअसल यही तो सब बच्चे करते हैं और करते रहे हैं। ऐसा ही है तो सवाल उठता है कि किसी भी प्रकार के व्यवस्थित खेलकूद आयोजित ही क्यों किए जाएँ? असल बात तो यह है कि इस प्रकार के खेलों में किए जाने वाले तात्कालिक बदलावों से बच्चों को कई ऐसे तत्व मुहैया नहीं हो पाते जो खेलकूद यानी स्पोर्टस् से उन्हें मिल सकते हैं, और इस बात को हमें समझना होगा। महत्वपूर्ण यह होगा कि उन्हें खेलकूद यानी स्पोर्टस् खुद ही आयोजित करने में मार्गदर्शित किया जाए ताकि वे बेहतर ढंग से खेलना सीखें। स्कूल को सुनिश्चित करना चाहिए कि सब बच्चे खेल पाएँ न कि बस मुट्ठी भर अच्छे खिलाड़ी खेल रहे हों और टीम का हिस्सा हों।

इस पर विचार करना भी शायद महत्वपूर्ण है कि क्या हमारे स्कूलों में होने वाले खेलकूद के आयोजन प्रतिस्पर्द्धा और प्रतियोगिता की भावना को केन्द्र में रखकर करवाए जाएँ या फिर पूरी तरह से इसके बिना। खेलकूद में, विशेष तौर से व्यक्तिगत प्रतियोगिता वाले खेलों में, खिलाड़ियों के बीच काफी तनाव होने की गुंजाइश रहती है। लेकिन यह भी सच है कि जीतने के लिए अतिरिक्त कोशिश करना आत्म–विकास का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, इसलिए जीतने के लिए खेलने को, उसमें निहित जद्दोजहद से अलग नहीं किया जा सकता।

लड़कियों के जीवन में खेल एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। मजा लेने और खेलने के लिए समय मिलने की बात लड़कियों के लिए इतनी आसानी से स्वीकार नहीं की जाती जितनी कि लड़कों के लिए। लड़कियों में परस्पर धक्का–मुक्की या खींचा–तानी करने के प्रति भी संकोच का होना शायद सामाजिक–सांस्कृतिक तौर पर उनमें आदत के रूप में घर कर चुका है। स्कूलों में खेलों को अधिक स्थान और महत्व दिया जाए तो लड़कियों और उनके माँ–बाप के मन में पैठ बना चुकी

ऐसी वर्जनाओं और पाबन्दियों को तोड़ा जा सकता है। नीतियों और कार्यक्रमों के माध्यम से सुनिश्चित होना चाहिए कि लड़कों के साथ–साथ लड़कियों की भागीदारी भी हो।

निष्कर्ष

खेलकूद ताजादम करने वाली ऐसी गतिविधि है जिसमें व्यक्ति अपने पूरे अस्तित्व के साथ शामिल होता है। वह उसे स्वाभाविक रूप से विकसित करती है। इसका वास्ता सिर्फ बुद्धि, रणनीति या बदलाव की प्रक्रिया को समझने से ही नहीं है, बल्कि शारीरिक क्रिया और समन्वय से भी है। खेल हमें हर कदम पर श्रेष्ठता हासिल करने के लिए प्रयासरत रहने को प्रेरित करते हैं।

अलग–अलग पृष्ठभूमि से आए बच्चों के रहन–सहन, अनुभव और मिजाज के हिसाब से खेलों के चयन में विविधता होना बहुत जरूरी है। हमें ऐसे पुख्ता टीम–खेलों के बारे में सोचना होगा जिनमें ज्यादा सामान या तैयारी नहीं लगते और जो स्कूल के टाइम–टेबल में भी आराम से फिट हो सकते हों। उदाहरण के लिए, खो–खो और वॉलीबॉल जैसे खेल जिनमें अधिकांश बच्चे भाग ले सकते हैं और जिनके लिए किसी बड़े मैदान या अधिक साज–सामान की भी आवश्यकता नहीं रहती। स्कूल की टीमों में बारी–बारी से नए खिलाड़ी खिलाए जाने चाहिए और बल अच्छे से अच्छा खेल दिखाने पर होना चाहिए न कि सिर्फ जीतने पर। हमारी कोशिश होनी चाहिए कि बच्चे खेलों में निहित नैतिक मूल्यों को समझें, इस बात को समझें कि खेलों का हमारे जीवन पर क्या असर पड़ता है, और साथ ही एक–दूसरे के साथ जुड़ना भी सीखें। इस सबसे अध्यापक और बच्चे एक अनौपचारिक माहौल में बराबरी की भावना के साथ एक–दूसरे से जुड़ सकते हैं – ऐसा होना ही चाहिए।

Notes and Reference:

1. A simple Google search for “Sports academies in India” sends up the names of several private sports academies many of which have been set up in the last two decades.
2. Indian Railways to set up 5 Sports Academies in India http://www.breakingnewsonline.net/sports/954-indianrail-ways-
   to-set-up-5-sports-academies-in-india.html accessed on 09-09-2011
3. http://education.nic.in/policy/npe-1968.pdf accessed on 09-09-2011

हृदयकान्त दीवान (हार्डी) *अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में फैकल्टी का हिस्सा हैं। वे 'एकलव्य' संस्था के सं.स्थापक समूह के एक सदस्य हैं, और वर्तमान में विद्याभवन सोसायटी, उदयपुर के संगठन सचिव एवं शैक्षिक सलाहकार हैं। पिछले 35 वर्षों से वे शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न तरीकों से और उसके विभिन्न पहलुओं पर कार्यरत रहे हैं। शैक्षिक नवाचार के प्रयासों और राज्य के शैक्षिक ढाँचे में बदलावों से वे खासतौर से जुड़े रहे हैं। उनका ई–मेल पता है – vbsudr@yahoo.com*

प्रीति मिश्रा *2008 से विद्याभवन शैक्षिक संसाधन केन्द्र के साथ काम कर रही हैं। कुछ समय के लिए वे विद्याभवन स्कूलों के साथ भी स्कूल रूपान्तरण परियोजना (स्कूल ट्रांसफॉर्मेशन प्रोजेक्ट) के तहत जुड़ी रही थीं, जिसने उनके दृष्टिकोण को बहुत प्रभावित किया। आप उनसे ई–मेल पर सम्पर्क कर सकते हैं – preeti@vidyabhawan.org*